कृष्ण चन्द्र भट्टाचार्य

निरपेक्ष सत् विचार

(Concept of the Absolute)

Scanned by TapScanner

न कुछ निर्दिष्ट किया जा सकता है ...

कारण कृष्ण चन्द्र इसे 'अनिश्चितता' (Indefinite) कहते हैं—जो 'सत्' का चरम रूप है, निरपेक्ष सत् (Absolute) है। इस प्रकार 'स्वतंत्रता-रूपी आत्म' (Subject as Freedom) 'निरपेक्ष सत्' (Absolute) ही है, जो आत्मपरकता के विकास का चरम लक्ष्य है। इसके अन्तर्गत—इसमें अन्तर्विष्ट कोई भावात्मक तत्त्व नहीं है, अतः इसके निषेध का प्रश्न नहीं उठता। इसी कारण तो यह सत् है क्योंकि सत् के निषेध का प्रश्न नहीं उठता। तब यह है कि इस स्तर का कोई निश्चित वैचारिक भाव या स्वरूप निर्धारण सम्भव नहीं। इसके प्रति हमारी कोई 'निश्चित' अभिवृत्ति या 'निश्चित' दृष्टि, भी नहीं बन सकती, इसे आत्म के समान 'भोगा' भी नहीं जा सकता। इसी कारण कृष्ण चन्द्र कहते हैं कि 'अनिश्चितता' (Indefinite) का स्तर ही 'निरपेक्ष सत्-विचार' है।

अभी-अभी हमने निरपेक्ष सत् (Absolute) को 'पूर्णतया अनिश्चित' कहा है। पहले भी कहा गया है कि कृष्ण चन्द्र के अनुसार सत् न आत्मनिष्ठ और न विषयनिष्ठ है। वस्तुतः इस पर कोई 'लेबल' चिपकाने का प्रश्न ही नहीं उठता। सच पूछा जाय तो इसका वैचारिक चित्रण भी सम्भव नहीं है। इसी कारण कृष्ण चन्द्र की मान्यता है कि निरपेक्ष सत् के सम्बन्ध में हमारे जो भी विचार बनते हैं, वे कुछ 'प्रतीकों' के माध्यम से बनते हैं।

कृष्ण चन्द्र कहते हैं कि पाश्चात्य विचारकों ने निरपेक्ष सत् के लक्षणों के विवरण का प्रयास किया है—और यही उनकी भूल है। उनका कहना है कि प्रथम बार कांट ने इस प्रकार के प्रयास की निरर्थकता को समझा। किन्तु उसने भी एक भूल कर दी कि उसने भी निरपेक्ष सत् को अज्ञान एवं अज्ञेय कह कर उसका विवरण दे दिया। यह उन्हें नहीं सूझा कि यह कहना भी सत् का विवरण ही देना है।

इसी कारण कृष्ण चन्द्र का कहना है कि निरपेक्ष सत् को 'सत्' कहने का भी प्रयास वस्तुतः उपयुक्त नहीं। यह वस्तुनिष्ठता, विषयनिष्ठता आदि सभी विवरणों से 'परे' है, क्योंकि सभी विवरणों में कुछ भावात्मक बिन्दु उभरते हैं—और उस रूप में 'निरपेक्ष सत्' का हर मानसिक चित्रण अयथेष्ट ही रहेगा। ऐसा हर तत्त्वमीमांसिक दृष्टि के सम्बन्ध में कहा जा सकता है, वे सब 'सत्' के स्वरूप को पकड़ने, समझने के विभिन्न ढंग अवश्य हैं, किन्तु इनमें किसी ढंग से 'सत्' का वास्तविक स्वरूप पकड़ में नहीं आता। प्लेटो का सर्व-व्यापी भाव तथा शून्यता-भाव, कुछ बौद्ध विचारकों का 'शून्यता-भाव', बर्गसां की प्राण-शक्ति, हेगेल का निरपेक्ष सत्—ये सभी उस 'अनिश्चितता' को चित्रित करने के प्रयत्न अवश्य हैं, किन्तु सभी अपने-अपने ढंग से अयथेष्ठ हैं, क्योंकि वे सभी किसी न किसी रूप में किसी न किसी निश्चित विधा में डालने का प्रयास करते हैं। कृष्ण चन्द्र कहते हैं कि इस संदर्भ में समझ लेना आवश्यक है कि निरपेक्ष सत् के सम्बन्ध में 'विचार करना' भी 'विचार करने' के शाब्दिक अर्थ में विचार करना नहीं है। इन बातों की उपयुक्त समझ के लिये यह देखना आवश्यक हो जाता है कि कृष्ण चन्द्र आखिर किस ढंग से 'निरपेक्ष सत्' (Absolute) की बात करते हैं।

सामान्यतः दर्शन का कार्य—विशेषतः तत्त्वमीमांसीय दर्शन का कार्य यही समझा जाता है कि वह चिन्तन एवं विचार के द्वारा 'परम सत्' के स्वरूप का कोई वैचारिक चित्र स्पष्ट करें। 'चिन्तन' दर्शन के प्रमुख उपकरण के रूप में स्वीकारा जाता है। किन्तु हर चिन्तन (Reflection) का कुछ 'अन्तर्विषय' (Content) होता है, तथा उसमें उस अन्तर्विषय की चेतना (Consciousness) रहती है। चिन्तन में ये दोनों अनिवार्यतः सम्बद्ध हैं—वह भी इस प्रकार की 'चेतना' तथा उसका 'अन्तर्विषय' एक दूसरे को 'आपदित' (Imply) करते हैं। चिन्तन् की इस मौलिकता को—चेतना (Con-sciousness) तथा 'चेतना के अन्तर्विषय' के (Content) पारस्परिक आपदित सम्बन्ध को—कृष्ण चन्द्र 'आपदन-रूप द्वैत' (Implicational Dualism) कहते हैं।

Scanned by TapScanner

'चेतना' तथा 'चेतना के अन्तर्विषय' के बीच जो 'आपदन' का सम्बन्ध है, वह साधारण 'आपदन' (Implication) से भिन्न है। साधारण आपदन के उदाहरण में, जैसे 'क से ख आपदित हैं' (क implies ख) के उदाहरण में जो सम्बन्ध है, उसमें एक पद निश्चित है और दूसरा पद उससे आपदित है। अर्थात् इस सम्बन्ध में जब तक कोई एक निश्चित 'पद' न हो, आपदन का सम्बन्ध हो ही नहीं सकता। इस उदाहरण में 'क' निश्चित-पद है—और 'ख' उससे आपदित है। यदि 'क' निश्चित पद नहीं होता तो यह आपदन-सम्बन्ध सम्भव ही नहीं होता। किन्तु वैचारिक चिन्तन में जो 'आपदित द्वैत' की बात हो रही है, उसका कोई पद निश्चित पद नहीं है। कहा गया है कि यहां 'चेतना' तथा 'उसके अन्तर्विषय' (Consciousness and its content) के बीच आपदन सम्बन्ध हैं, किन्तु न तो यहां 'चेतना' में निश्चितता है और न उसके अन्तर्विषय में। अर्थात् इन दोनों का सम्बन्ध अनिश्चित ही है। "We have only an indefinite relation between content and consciousness."*

अब इस 'आपदन-रूप द्वैत' की अनिश्चितता यह तो स्पष्ट ही करती है कि वैचारिक चिन्तन की यह अन्तिम विधा नहीं हो सकती, क्योंकि चिन्तन निश्चितता की मांग करता है। तो चिन्तन इस अनिश्चतता से भी ऊपर उठना चाहेगा। 'आपदन-रूप द्वैत' का स्वरूप ही चिन्तन को चिन्तन के इस स्तर से ऊपर उठने के लिये विवश करता है। किन्तु इसके लिये तो इस स्तर की चेतना से उच्चतर चेतना की आवश्यकता होगी—क्योंकि जब 'चिन्तन' पर ही चिन्तन करना है, जब चिन्तन के मूल रूप 'आपदन-रूप द्वैत' में निहित अनिश्चितता पर विचार करना है तो यह चिन्तन तो सामान्य चिन्तन से उच्चतर (Supra-reflective) चिन्तन होगा। किन्तु इसका तो यह अर्थ हुआ कि वह स्तर 'वैचारिक चिन्तन' से परे होगा। और यदि वह 'वैचारिक चिन्तन' से परे है, तो वह इस 'आपदन-रूप द्वैत' से भी मुक्त है। कुछ इस प्रकार की 'अतिवैचारिक चेतना' की ही सम्भावना जाग्रत होती है। कृष्ण चन्द्र कहते हैं कि कुछ वैसी ही चेतना शायद 'निरपेक्ष सत्' के स्वरूप की कुछ झांकी दे दे। किन्तु उस स्वरूप का वैचारिक चित्र भी नहीं खींचा जा सकता, क्योंकि वह विचार के अनिवार्य 'आपदन-रूप द्वैत' (Implicational Dualism) से मुक्त है। इसी कारण कृष्ण चन्द्र कहते हैं कि निरपेक्ष सत् (Absolute) है—"What is free from the implicational Dualism of content and consciousness."**

किन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि कृष्ण चन्द्र कह रहे हैं कि इस स्तर की चेतना में इन दोनों की 'एकरूपता' की चेतना होती है। कभी-कभी कुछ विचारकों ने ऐसी बात कही है, किन्तु कृष्ण चन्द्र कहते हैं कि ऐसी बातों को उनके यथार्थ अर्थ में नहीं समझना चाहिये। यदि 'चेतना' तथा 'उसके अन्तर्विषय' की एकरूपता की बात भी की जाती है तो वह या तो किसी प्रतीकात्मक अर्थ में, या किसी आलंकारिक अथवा लाक्षणिक अर्थ में।

---

*K.C. Bhattacharya, *The Concept of Absolute and its alternative forms, Studies in Philosophy*, Vol. II, p. 121.
**Ibid., p. 128.

वस्तुत: जब यह चेतना सामान्य वैचारिक चिन्तन के स्तर की ऊपर की चेतना है—तो उसके सम्बन्ध में किसी वैचारिक चित्रण को उसका यथार्थ विवरण नहीं कहा जा सकता है।

कृष्ण चन्द्र के अनुसार 'आपदन-रूप द्वैत' (Implicational Dualism) तीन प्रकार के होते हैं। 'तीन' इस कारण कि वैचारिक चेतना, जिसका यह स्वरूप है, ही तीन प्रकार की है—ज्ञानात्मक, भावनात्मक तथा क्रियात्मक (Knowing, Feeling and Willing)। आपदन-रूप द्वैत ज्ञानात्मकता के क्षेत्र में हो सकता है या भावना के क्षेत्र में या क्रियाओं के क्षेत्र में भी हो सकता है। ज्ञान में विषय चेतना से निर्धारित नहीं रहता—क्योंकि वहां 'चेतना' और 'विषय' का द्वैत पूर्णतया स्पष्ट होता है। भावना में चेतना से विषय एक प्रकार से निर्धारित हो जाता है—क्योंकि भावनात्मक चेतना के अनुरूप ही भावना का लक्षण स्पष्ट होता है। संकल्प तथा क्रियाओं में 'चेतना' एवं 'विषय' एक प्रकार से संगठित रहते हैं। इस आलोक में 'चेतना' तथा उसके 'अन्तर्वस्तु' के द्वैत को देखते हुए वे कहते हैं, "the content may be spoken of (*a*) as unconstituted by consciousness or (*b*) as constituted by consciousness and (*c*) as along with consciousness constituting some kind of unity."*

पहले में चेतना से उसका अन्तर्वस्तु मुक्त है, दूसरे में चेतना अपने अन्र्तवस्तु से मुक्त है, तथा तीसरे में दोनों के एक प्रकार से संगठित रूप की चेतना उजागर होती है। तो, आपदन-रूप द्वैत इन तीन प्रकारों का है, निरपेक्ष सत् को इस आपदन-द्वैत से मुक्त माना गया है, अत: निरपेक्ष सत् के सम्बन्ध में 'तीन' प्रकार से सोचा जा सकता है।

(१) पहले प्रकार का विचार ज्ञानात्मकता के क्षेत्र से जुटा है, अत: इसमें 'ज्ञान' के क्षेत्र के निरपेक्ष सत् (Absolute) पर विचार प्रकाश में आता है। इसका यह अर्थ नहीं कि 'निरपेक्ष सत्' ज्ञान का अन्तर्विषय (Content) बन जाता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है यहां तो ज्ञान अन्तर्वस्तु से मुक्त है, अत: यह 'ज्ञान' से असम्बन्धित है। अत: यह 'निरपेक्ष सत्' ज्ञान की सीमा के अन्तर्गत नहीं है। कृष्ण चन्द्र इसे ऐसा ज्ञान कहते हैं जिस ज्ञान में कोई अन्तर्वस्तु (Content) नहीं है (Known no-content)। इसका अर्थ है कि जब 'निरपेक्ष सत्' के ज्ञान की बात की जाती है, तो उसका अर्थ है कि यह एक ऐसा ज्ञान है—जिसके विषय-निर्देश का प्रश्न ही नहीं उठता। इसे इस रूप में भी कह सकते हैं कि यह इस प्रकार ज्ञात है जिस प्रकार कोई ज्ञात-विषय ज्ञात नहीं होता।

(२) अब हम क्रियात्मकता अथवा संकल्पनात्मकता के क्षेत्र के निरपेक्ष (Absolute) पर विचार करें। कृष्ण चन्द्र कहते हैं कि पहले उदाहरण में निरपेक्ष उस 'विषयवस्तु' के रूप में स्पष्ट होता है जो ज्ञानात्मक चेतना से स्वतंत्र है, और इस दूसरे उदाहरण में निरपेक्ष उस चेतना के रूप में स्पष्ट होता है जो अपने अन्तर्वस्तु (Content) से पूर्णतया मुक्त है। अत: इस रूप में 'निरपेक्ष' पर विचार करने में 'निरपेक्ष' के किसी अन्तर्विषय का विचार आ ही नहीं सकता—एक दृष्टि से यह निरपेक्ष अन्तर्वस्तु-विहीन है, रिक्त है। वैसे हमारे सामान्य वैचारिक ढंग के लिये यह समझना भी कठिन है कि किस प्रकार संकल्पनात्मकता अतन्र्वस्तु-विहीन स्वतंत्रता (उन्मुक्तता) हो सकती है। इसे इस प्रकार से समझने का

Scanned by TapScanner

प्रयास करें। संकल्प स्वरूपतः अपनी परिपूर्णता की प्रवृत्ति है, एक ऐसी प्रवृत्ति है जो अपने को पाना चाहती है। लेकिन इसकी परिपूर्णता तो एक प्रकार से इसकी समाप्ति है इसका निषेध है। जब कोई संकल्प पूर्ण होता है, तो वह संकल्प अब रहता नहीं, हम उससे ऊपर उठ जाते हैं, और उस प्रकार मूल संकल्प निषेधित हो जाता है। कृष्ण चन्द्र कहते हैं 'We will be an act in order to get rid of the being of the act.' इस प्रकार संकल्पमूलक निरपेक्ष में कोई अन्तर्वस्तु (Content) नहीं रहता। इस दृष्टि से निरपेक्ष सत् हर सत् का निषेध है।

(३) उसी प्रकार हमारा वैचारिक चिन्तन हर चेतना और उसके अन्तर्विषय--हर अनुभूत अन्तर्वस्तु तथा उसकी अनुभूति--के संगठन या एकत्व की मांग तो करता ही है। इस प्रकार का संगठन, जो चेतना और उसके अन्तर्वस्तु (Content) के द्वैत से ही मुक्त है, भावनामूलक निरपेक्ष (Absolute of feeling) है। इसे स्पष्ट करते हुए कृष्ण चन्द्र कहते हैं, "[It may be understood as] content that is indefinitely other than consciousness or as consciousness that is indefinitely other than content". चेतना तथा उसके अन्तर्वस्तु के आपदितद्वैत से मुक्त होने का अर्थ यही है कि दोनों एक दूसरे से मुक्त प्रतीत हों, और फिर भी इस भिन्नता की 'निश्चित' अवगति भी न हो। यदि दोनों की भिन्नता की निश्चित अवगति हो गयी, तो वह तो वैचारिक चिन्तन के स्तर की बात हो जायगी, उससे स्वतंत्र निरपेक्ष के स्तर की नहीं। इसी कारण ऊपर के वाक्य में दोनों विकल्पों में कृष्ण चन्द्र ने 'Indefinitely' (अनिश्चित रूप में) शब्द का उपयोग किया है। अतः भावनामूलक निरपेक्ष सभी 'ज्ञात' विषयों से ऊपर है, यह सत् तथा असत् दोनों से ऊपर है। यह अनिश्चितता तथा परात्मकता (Transcendent) का निरपेक्ष है।

ध्यान देने की बात है कि ऊपर की गयी विवेचना से बड़ा ही विचित्र निष्कर्ष स्थापित हो रहा है। 'ज्ञान मूलक निरपेक्ष' (Absolute of knowing) ऐसा, है जिसे जाना नहीं जा सकता। 'संकल्पमूलक निरपेक्ष' (Absolute of willing) ऐसा है जो अन्तर्विषय (Content) से रिक्त है। 'भावनामूलक निरपेक्ष' सत् असत् दोनों से परे है। यह विचित्र निष्कर्ष बस उतना ही स्थापित हो रहा है कि 'निरपेक्ष' पूर्णतया अनिश्चितता (Indefinite) है। ज्ञान संकल्प तथा भावना किसी की कोई विधा इस निरपेक्ष को निश्चित ढांचे में नहीं ढाल सकती।

कृष्ण चन्द्र इसी निष्कर्ष पर एक अन्य प्रकार से भी पहुंचते हैं। वे 'निरपेक्ष' (Absolute) के तीन वैकल्पिक रूपों (Alternative forms या alternation) की बात करते हैं। उसका कहना है कि निरपेक्ष का अवबोध तीन रूपों में हो सकता है जिन्हें वे सत्यता, स्वतंत्रता तथा मूल्य (Truth, Freedom and Value) कहते हैं। इन्हें हम कुछ और स्पष्ट करें। निरपेक्ष का अवबोध 'सत्यता' या 'भावात्मक सत्' (Truth or Positive being) के रूप में हो सकता है--जो ज्ञात नहीं होता। 'सत्यता' का स्वरूप है कि वह स्वतः प्रकाश है, और इसी कारण वह किसी सीमित चेतना में सिमट नहीं सकता--उसका विषय नहीं हो सकता। इसी कारण 'सत्यता' के ज्ञात होने का प्रश्न नहीं उठता। 'उसी प्रकार 'निरपेक्ष'

का अवबोध 'स्वतंत्रता' के रूप में हो सकता है। संकल्प तथा स्वतंत्रता एक रूप हैं, क्योंकि स्वतंत्रता तो संकल्प ही है, तो स्वतंत्रता का कोई भावात्मक निर्धारण सम्भव ही नहीं। संकल्प की परिपूर्ति स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति है, और (जैसा कि ऊपर बताया गया है) यह संकल्प का निषेध भी है। अतः स्वतंत्रता के रूप में निरपेक्ष का कोई अपना लक्षण विशिष्ट नहीं होता। 'निरपेक्ष' का अवबोध 'मूल्य' के रूप में भी हो सकता है। 'मूल्य' अनिश्चितता का ही क्षेत्र है, क्योंकि मूल्य को न 'सत्' कहा जा सकता है न असत्, न इसे स्वतः सिद्ध कहा जा सकता है और न इसे अज्ञेय कहा जा सकता है। इस अर्थ में मूल्य इन सबों से 'परे' है।

इन तीनों के पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार करना कठिन है--मात्र यही कहा जा सकता है कि निरपेक्ष के अवबोध के ये तीन विकल्प हैं, अतः ये तीनों 'निरपेक्ष' के वैकल्पिक रूप हैं--और इनका जो सम्बन्ध है वह वैकल्पिक प्रत्यावर्त्तन (Alternation) है। वस्तुतः इस प्रत्यावर्त्तन के द्वारा ही 'निरपेक्ष' का हम कुछ चित्रण कर पाते हैं। उनका कहना है कि एक प्रकार से देखने पर यह प्रश्न कि ये तीनों विकल्प एकरूप हैं या भिन्न--एक प्रकार से अर्थहीन प्रश्न प्रतीत होता है, किन्तु दूसरे ढंग से देखने पर कहा जा सकता है कि है तो तीनों एकरूप ही, किन्तु उनकी एकरूपता को व्यक्त नहीं किया जा सकता। निरपेक्ष सत्य सत् एवं मूल्य के विकल्प की एकरूपता इस अर्थ में कि एक दृष्टि से सत्य सत् प्रतीत होता है, सत् मूल्य प्रतीत होता है तथा मूल्य सत्यता प्रतीत होता है, और फिर यह भी प्रतीत होता है कि तीनों सर्वथा एकरूप नहीं हैं। इस वैवध्यता निरपेक्ष के सम्बन्ध में इन विभिन्नता के आधार पर ही कृष्ण चन्द्र कहते हैं कि इन तीनों का प्रत्यावर्त्तन (Alternation) निरपेक्ष का स्वरूप है। अतः यह भी कहा जा सकता है कि इनमें से हर निरपेक्ष (Absolute) है, तथा निरपेक्ष इन तीनों विकल्पों में रूप लेता है। 'निरपेक्ष' का इस प्रकार का विवरण भी वस्तुतः यही दिखाता है कि हमारा वैचारिक चिन्तन निरपेक्ष के चित्रण में समर्थ नहीं, और इसी अर्थ में निरपेक्ष अन्ततः अनिश्चित एवं अनिर्दिष्ट ही प्रतीत होता है।

किन्तु, इस स्थल पर एक तर्क सम्मत आपत्ति उठ जाती है। यदि निरपेक्ष पूर्णतया अनिश्चित है, यदि सत्-असत् के भेद से परे है, और यदि वैचारिक चिन्तन के ज्ञात ढंगों में इसके रूप को व्यक्त भी नहीं किया जा सकता तो इसके त्रिविध रूपों तथा उनके प्रत्यावर्त्तन का विवरण किस आधार पर किया जा रहा है। कृष्ण चन्द्र को यह पूर्वानुमान था कि उनके निरपेक्ष विचार पर ऐसी तार्किक आपत्ति उठायी जा सकती है। उनका कहना है कि 'निरपेक्ष' के इन विवरणों का यह अर्थ नहीं निकलता कि निरपेक्ष अनिर्दिष्ट एवं अनिश्चित नहीं है। शंकर ने ब्रह्म को अनिर्वचनीय कहा है, फिर भी उन्होंने ब्रह्म का विवरण किया है। ब्रह्म को 'सच्चिदानन्द' कहना भी इसी प्रकार का विवरण है। किन्तु इस प्रकार के विवरण उसके अनिर्वचनीय स्वरूप को अपने ढंग से समझने का एक प्रयास है।

कृष्ण चन्द्र कहते हैं कि ब्रह्म को सत्, चित् तथा आनन्द कहना कुछ वैसा ही है जैसा निरपेक्ष को सत्य सत् तथा मूल्य कहना। अतः इस प्रकार का विवरण निरपेक्ष के परातम रूप को खण्डित नहीं करता। कृष्ण चन्द्र यह नहीं कह रहे कि एक निरपेक्ष सत् है जिसके तीन रूप होते हैं। निरपेक्ष तथा उसके प्रत्यावर्त्तन के तीनों रूप मात्र प्रतीक हैं जिनके आधार

पर उस सम्भावना के सम्बन्ध में संगत ढंग से सोच पाते हैं। वे कहते हैं, "It is meaningless therefore, to cognitively assert that there are three Absolutes or one Absolute....What are here understood as *three* are only their verbal symbols."* कृष्ण चन्द्र के अनुसार निरपेक्ष का कोई ज्ञात-अन्तस्र्वरूप नहीं है, अतः निरपेक्ष का कोई विवरण हमारे सामान्य अर्थ में संज्ञानात्मक (Cognitive) नहीं है। इन विवरणों की आवश्यकता दर्शनशास्त्र में उभर आती है, क्योंकि निरपेक्ष के सम्बन्ध में कुछ दार्शनिक सिद्धान्त उभर आये हैं। इन तीनों प्रत्यावर्त्तन के रूपों को प्रकाश में लाने का एक वैचारिक लाभ है—इनके अन्तर्गत सभी प्रकार के विभिन्न सिद्धान्त समाविष्ट हो जाते हैं। किसी एक रूप पर बल देने से एक विशेष प्रकार का सिद्धान्त प्रकाश में आ जाता है।

अब यह स्पष्ट है कि कृष्ण चन्द्र का 'निरपेक्ष-विचार' इसके प्रचलित रूपों से अलग है। निरपेक्ष को हम जानने के साधारण प्रचलित अर्थ में नहीं जा सकते किन्तु इसमें विश्वास किया जा सकता है। इसका हमें आंशिक अवबोध ही हो पाता है—और वह भी अभावात्मक रूप में, निषेधों के माध्यम से। इसके विषय में जो कुछ भी कहा जाता है वह प्रतीकात्मक भाषा में ही। इसी दृष्टि से यह अनिर्दिष्ट एवं अनिश्चित है।